हर्बर्ट स्पेंसर: सावयवी सादृश्यता

(Herbert Spencer: Organic Analogy)

डॉ. अनुराग कुमार पाण्डेय

सहायक प्रोफेसर

समाजशास्त्र विभाग

जे. एस. हिन्दू (पी. जी.) कॉलेज, अमरोहा

हर्बर्ट स्पेंसर (1820–1903): व्यक्तित्व एवं कृतित्व

- **जन्म:** 27 अप्रैल, 1820 डरबी, इंग्लैण्ड
- मध्यवर्गीय परिवार में जन्म
- आंग्ल समाजशास्त्र का जनक
- डरबी दार्शनिक समाज का सेक्रेटरी
- इंग्लैण्ड की साप्ताहिक पत्रिका 'द इकॉनोमिस्ट' के उप–संपादक, 1848
- साहित्य में शांति पुरस्कार हेतु नामांकित, 1902

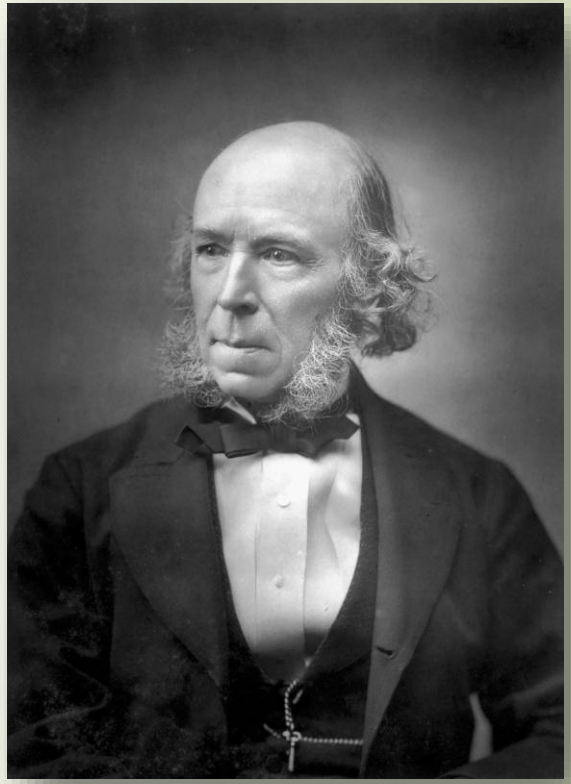

प्रमुख कृतियाँ

- Social Statics (1851)
- First Principles (1862)
- Principles of Biology (1864–67)
- Principles of Psychology (1870–72)
- The Study of Sociology (1873)
- Principles of Sociology (1876–96)
- The Man Versus State (1884)
- Descriptive Sociology (1890)

हर्बर्ट स्पेंसर: बौद्धिक परिवेश

- अगस्त कॉम्ट का उत्तराधिकारी: ऐसा कहा जाता है कि अगस्त कॉम्ट ने समाजशास्त्र के जिस नक्शे को बनाया, स्पेंसर ने उसमें रंग भरे।
- चार्ल्स डार्विन, लैमार्क, सेंट साइमन, अगस्त कॉम्ट से प्रभावित
- अगस्त कॉम्ट की ही भाँति स्पेंसर ने भी गणितशास्त्र तथा प्राकृतिक विज्ञानों का अध्ययन किया।
- समाजशास्त्र की व्याख्या मनोविज्ञान तथा जीवविज्ञान के आधार पर
- समाजशास्त्र को एक तार्किक विज्ञान बनाने पर जोर

हर्बर्ट स्पेंसर: सैद्धांतिक परिचय

- सामाजिक डार्विनवादी
- समाज एक जैविक सावयव के समान होता है।
- समाजशास्त्र अधिसावयवी प्रघटनाओं का अध्ययन करता है।
- समाजशास्त्र एक तार्किक विज्ञान है।
- मानव समाज की व्याख्या एक ऐसे जीवित, निरंतर बढ़ते हुए सावयव/ जीवधारी के रूप में की, जो धीरे–धीरे सरल से एक जटिल व्यवस्था का रूप ले लेता है।
- सामाजिक संरचना तथा सामाजिक संस्थाओं में भी परिवर्तन की उद्विकासीय प्रवृत्ति होती है।
- स्पेंसर के समाजशास्त्र में उपयोगितावादी व्यक्तिवाद तथा सामाजिक व्यवस्थाओं के उद्विकासीय जैविकीय मॉडल को समन्वय करने का प्रयास किया गया है।

सावयवी सादृश्यता

- *Social Statics,* 1851
- प्राणीशास्त्रीय उद्विकासीय सिद्धांत के आधार पर समाज की व्याख्या
- सर्वप्रथम 'प्रकार्य' शब्द का प्रयोग
- मानव समाज की व्याख्या एक ऐसे जीवित, निरंतर बढ़ते हुए सावयव के रूप में की है, जो धीरे–धीरे सरल से एक जटिल व्यवस्था का रूप ले लेता है।
- स्पेंसर के शब्दों में,

> *'जीव–रचना तथा समाज के संगठन में इतनी समानता देखने को मिलती है कि इसे हम सादृश्यता की दशा कह सकते हैं। जैविकीय तथा सामाजिक सावयव के जीवन पर समान दशाएँ लागू होती हैं। जब हम एक समाज की उत्पत्ति, विकास, परिपक्वता तथा पतन की प्रक्रिया को देखते हैं, (तो) यह स्पष्ट हो जाता है कि यह उन्हीं सिद्धांतों पर आधारित है जो जीव–रचना की उत्पत्ति, विकास तथा मृत्यु को स्पष्ट करते हैं।'*

सावयवी सादृश्यता: समाज व सावयव

- समाज तथा सावयव की समानता को प्रमुखतः तीन क्षेत्रों में देखा जा सकता है–
  - समाज व सावयव के नियमों में समानता
  - इकाइयों के बीच विभेदीकरण तथा पारस्परिक निर्भरता
  - विकास तथा ह्रास में समानता
- जिस प्रकार से त्वचा जीवधारी को बांधे व एकीकृत किए रहती है, ठीक उसी प्रकार से मूल्य व नैतिकता समाज को बांधे व एकीकृत रखते हैं।

व्यवस्था/ संरचना	जीवधारी	समाज
नियंत्रक व्यवस्था	केंद्रीय स्नायु तंत्र	सरकार/ राज्य
संपोषणीय व्यवस्था	खाद्य पदार्थ	उद्योग (नौकरी, धन, अर्थव्यवस्था)
वितरण व्यवस्था	नसें व धमनियाँ	सड़क, यातायात, इंटरनेट आदि

सावयवी सादृश्यता: समाज व सावयव

समानता

- धीरे–धीरे संरचनात्मक विकास अर्थात् जड़ पदार्थों से भिन्न प्रकृति
- सरल से जटिल
- विकास के साथ–साथ अंगों का विशेषीकरण व श्रम–विभाजन
- विभेदीकरण के साथ विभिन्न अंगों में बढ़ते अंतःसंबंध व अंतःनिर्भरता
- अंतःसंबंध के आधार पर अस्तित्व बनाए रखने की व्यवस्था
- विविध साधनों से नियंत्रण
- अनेक इकाइयों से संरचना का निर्माण
- इकाई के नष्ट हो जाने के बाद भी अस्तित्व

भिन्नता

- सावयवी विकास प्राकृतिक नियमों के अनुरूप, जबकि समाज का विकास मानवीय प्रयत्नों के अनुरूप
- अनेक कोशिकाओं से सावयव का निर्माण तथा कोशिकाओं का स्वतंत्र अस्तित्व संभव नहीं, जबकि समाज की इकाइयों का स्वतंत्र अस्तित्व संभव
- सावयव में चेतना शक्ति केंद्रित रहती है, जबकि समाज के प्रत्येक अंग में पृथक चेतना शक्ति विद्यमान रहती है।

सावयवी सादृश्यता

सावयवी सादृश्यता अथवा सावयववाद एक ऐसा सिद्धांत अथवा परिप्रेक्ष्य है, जिसके अनुसार समाज को संरचना एवं प्रकार्य की दृष्टि से एक जैविकीय सावयव के समान माना जाता है। स्पेंसर ने समाज को एक सावयवी समाज मानकर उसकी तुलना मानव अथवा किसी भी जीवधारी के आत्मनिर्भर अंगों द्वारा निर्मित संपूर्ण शारीरिक व्यवस्था से की है।

Next Class:

हर्बर्ट स्पेंसर: उद्विकासवाद तथा अन्य अवधारणाएँ

(Herbert Spencer: Evolutionism & Other Concepts)